# स्वयं के दोष देखें

**प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,**

**पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान**

मानव का यह स्वभाव है कि दूसरों के छोटे से अवगुणों को देख लेता है, किन्तु पहाड़ के समान बड़े अपने अवगुणों को नहीं देख पाता। इसका मुख्य कारण यह है कि मानव दूसरों के अवगुणों को देखने का आदी हो गया है। आत्म सुधार के लिए स्वयं के दोषों को देखना बहुत आवश्यक है। जब तक मनुष्य अपने दोषों को सुधारेगा नहीं, तब तक उसका अन्तःकरण शुद्ध नहीं हो सकता। सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होने के लिए स्वयं के दोषों को देखना आवश्यक है। मनुष्य को दूसरों के दोषों को देखकर अपने भावों को नहीं बिगाड़ना चाहिए। भाव बिगाड़ने से बन्धन होता है।

भाव रूपी बीज के बपन होने से नकारात्मकता आती है। इस सन्दर्भ को दादा भगवान जो आधुनिक युग के एक महान विचारक हैं, जिन्होंने अक्रम विज्ञान का महान अवदान समाज को दिया है। दादा भगवान स्वयं कहा करते थे कि यह नाम व्यक्ति का नहीं है बल्कि अन्तर विराजमान शुद्ध आत्मा ही दादा भगवान है। दादा भगवान को यह ज्ञान हो गया था कि शरीर भिन्न है और आत्मा भिन्न है। जो व्यक्ति शरीर और आत्मा को भिन्न–भिन्न देखता है वह आत्मदर्शी होता है। आत्मा केवल ज्ञान स्वरूप है। आत्मा का स्वरूप सच्चिदानन्द है। जब कर्म रज आत्मा के साथ जुड़ जाते हैं तो आत्मा का स्वाभाविक गुण प्रकट नहीं हो पाता। इसे दूर करने के लिए आत्मा के स्वाभाविक स्वरूप का ज्ञान आवश्यक है। संत कबीर बहुत बड़े ज्ञानी थे। उन्होंने लिखा है कि –

**बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।**

**जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय।**

अर्थात कबीरदासजी कहते हैं कि जब मैं दूसरों के दोषों को देखने के लिए घर से निकला तो मैंने यही पाया कि इस संसार में मुझसे बुरा कोई नहीं है। मनुष्य जिस चश्में से देखता है, चश्में के रंग के अनुकूल ही दुनिया उसे दिखाई देती है। वस्तु का पारमार्थिक स्वरूप

कभी–कभी प्रत्यक्ष से भिन्न होता है। इसलिए ज्ञान रूपी नेत्रों से देखना बहुत आवश्यक है। मनुष्य को अपने अन्दर विद्यमान शुद्ध आत्मा का दर्शन करना चाहिए। दोष होना मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। यदि मनुष्य में दोष न रहे तो वह भगवान बन जाये। इसलिए मानव को अपने दोषों का ज्ञान होना चाहिए और उसे दूर करने का प्रयास करना चाहिए। यह प्रयास कई प्रकार से किया जा सकता है। उसमें सेवा धर्म भी एक प्रमुख धर्म है।

सेवा एक ऐसा गुण है जिसके द्वारा अहंकार नष्ट हो जाता है। सेवा तीन प्रकार से की जा सकती है– तन, मन और धन से। तन की सेवा शारीरिक परिश्रम के द्वारा की जा सकती है। मन की सेवा समाज को चिन्तन, मनन, नये विचार और मार्ग दर्शन के द्वारा की जा सकती है। धन से समाज के उन वर्गों के उत्थान के लिए जो धन से हीन है या जिनके पास पढ़ने–लिखने के साधन नहीं है उनको आर्थिक सहायता देकर सेवा की जा सकती है। सेवाधर्म बहुत की गूढ़ है। अतः सेवा करने वाले व्यक्ति को नम्रता पूर्वक चाहे व जिस क्षेत्र में हो सेवा का योगदान देना चाहिए।

मानव जीवन मे चार तरह के ऋण हैं– गुरु ऋण, देव ऋण, पितृ ऋण, और समाज ऋण। योगी लोग भी इसके महत्व को नहीं समझ सके। सेवा एक शाश्वतिक धर्म है। सेवा भेद को समाप्त कर देती है। ऊँच–नीच, बड़ा–छोटा का भेद सेवाभाव में नहीं रहता। सेवा एक आंतरिक गुण है। सेवा अहंकार को भी समाप्त कर देती है। शिष्य के प्रति गुरु का भाव और गुरु के प्रति शिष्य का भाव कैसे होना चाहिए, यह सेवा के द्वारा ही प्रकट होता है। शिष्य को चाहिए कि वह गुरू की तरफ पैर करके न बैठे। ऊँचे स्वर में गुरु से बात न करे। गुरु के इंगित को समझकर उसके आदेश को मानने के लिए सदैव तत्पर रहे। गुरु के समक्ष सदैव विनम्रता का भाव प्रकट करे। नम्र वाणी में व्यवहार करे, जिससे गुरु की कृपा शिष्य पर बनी रहे। प्राचीनकाल में भारत में गुरुकुल परम्परा थी। शिष्य गुरु के आश्रम में जाकर शिक्षा ग्रहण करते थे। शिष्य सेवा करते थे। गुरु उनको विद्यादान देते थे। जिससे शिष्य के भविष्य का निर्माण होता था। गुरु शिष्य को परा और अपरा विद्याओं का ज्ञान प्रदान करते थे। परा–विद्या अध्यात्मक विद्या है और अपरा विद्या भौतिकता का ज्ञान कराने वाली विद्या है। इन विद्याओं

का ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् शिष्य का ज्ञाननेत्र उद्घाटित हो जाता था और वह सदाचार शिष्टाचार का जीवन जीता था।

गुरु ही शिष्य को ईश्वर का ज्ञान करा देते थे। गुरु स्वयं आचारवान होते थे और शिष्य को आचार–विचार की उत्तम शिक्षा देते थे, जिससे शिष्य के चरित्र का निर्माण होता था। शिष्य अपनी सेवा के द्वारा गुरु ऋण से मुक्त होता था। देवपूजन करके देवऋण से मुक्त होता था। देवऋण का तात्पर्य है कि इस संसार में जीव को लाने वाला ईश्वर की कृपा ही है। देवताओं के प्रति भक्ति, यज्ञ–यागादि का विधान, देवपूजन, अर्चन, स्तुतिपाठ आदि के द्वारा देवताओं को प्रसन्न किया जाता था। जीव को इस संसार में लाने वाला माता–पिता है। अतः बड़ों को दोष न देकर स्वंय के दोष देखकर सुधार करना चाहिए।